|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

1/2 (श्लोक 1-8), रविवार, 23 जून 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/ctSSVjQHAe4

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक श्रद्धा का प्रभाव

पारम्परिक दीप प्रज्वलन, प्रार्थना, भगवान श्रीकृष्ण जी के चरणों में वन्दन करते हुए और परम पूजनीय श्री गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के श्री चरणों में वन्दन करते हुए और सभी गीता साधकों का अभिवादन करते हुए आज के सत्र का प्रारम्भ हुआ।

आज लर्न गीता का चतुर्थ वार्षिक उत्सव है। तेईस जून दो हजार बीस को परम पूज्य स्वामीजी के अनुग्रह से कॉविड की महामारी के बीच इसकी स्थापना हुई थी। उस समय, जो कभी भी पहले नहीं हुआ, इस प्रकार की परिकल्पना को लेकर गीता परिवार के कार्यकर्ताओं ने स्वामी जी व हमारे राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉक्टर संजय जी मालपानी की प्रेरणा से, हम सभी ने इस अत्यन्त निष्कामक यज्ञ का आरम्भ किया। आरम्भ करते हुए हम यह अनुमान नहीं लगा सकते थे कि यह इतना विशाल यज्ञ हो जाएगा परन्तु भगवान का कार्य हो, एक सन्त का सङ्कल्प हो और उसमें निष्काम सेवा करने वाले कर्मनिष्ठ गीता सेवी हों तो इसका परिणाम कैसा होता है, यह सब हमने देखा। दस लाख साधक, एक सौ अस्सी देश, सुबह चार बजे से रात के दो बजे तक इक्कीस समय खण्डों में, तेरह भाषाएँ, ढाई हजार से ज्यादा जूम कक्षाएँ। इक्यासी से भी ज्यादा विभाग। हमें तो केवल दो, तीन या चार कार्यकर्ताओं की सेवा देखने का अवसर मिलता है जो हमें पढ़ाते हैं, टेक बन्धु हैं उन्हें ही देखते हैं। हम विवेचन में एंकर्स को देख लेते हैं तो यह तो कोई चार-पाँच ही विभाग हुए। ऐसे इक्यासी विभाग हैं जिसके अन्दर दस हजार से भी ज्यादा निष्काम गीता सेवी हैं जिन्हें कोई वेतन नहीं मिलता, कोई नाम नहीं मिलता, कोई प्रशंसा नहीं मिलती। केवल भगवान के कार्य से जुड़ा हूँ इसी भाव से सेवा करते जा रहे हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता मन्त्रमयी है और उनके चमत्कार हम अनुभव कर सकते हैं। हमारे यहाँ हजारों साधक हैं उन्हें भी पता है कि हमें क्या मिल रहा है। जब हमने लर्नगीता में प्रवेश लिया था तो हमें लगता नहीं था कि इतना अच्छा लगेगा। शुरू में तो हमें लगा कि हम संस्कृत पढ़ ही नहीं पाएँगे। यह हमारे बस में नहीं है परन्तु जब प्रशिक्षकों की मनमोहक वाणी से और उनके द्वारा उत्साहवर्धन से इस प्रकार का वातावरण मिला तो न चाहते हुए भी लेवल एक से लेवल चार तक पहुँच गए और अब तो यदि शनिवार और रविवार को कक्षा नहीं होती है तो लगता है कि आज का दिन तो बिल्कुल खाली लग रहा है और फिर जब लेवल एक से दो का मध्यान्तर आता है और दो से तीन का मध्यान्तर आता है तो यह पन्द्रह दिन भी हमें भारी लगने लगते हैं। यह सारा आकर्षण भगवान की प्रत्यक्ष वाणी का है।

कलयुग में भगवान गीता जी के रूप में प्रत्यक्ष विराजमान है। भगवान ने कहा था कि गीता मेरा हृदय है और हम बहुत भाग्यशाली हैं जो हम इस भगवद्गीता को पढ़ने के लिए, सीखने के लिए चुने गए हैं और अपने जीवन में लाने का प्रयास कर रहे

हैं। यह भगवान की अति अद्‌भुत कृपा हम सब पर है। पूज्य स्वामी जी की निष्काम भक्ति द्वारा और उनकी कृपा है कि हम लोग इस प्रकार भक्ति में सम्मिलित हो रहे हैं।

गत सप्ताह हमने सोलहवें अध्याय का चिन्तन देखा था अब हम सत्रहवें अध्याय का चिन्तन आरम्भ करते हैं। सोलहवें अध्याय के तेईसवें और चौबीसवें श्लोक में भगवान ने शास्त्रों की मर्यादा का आग्रह किया है और कहा-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।16.23।।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

श्रीभगवान कहते हैं- हे अर्जुन! जो शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है वह न सिद्धि को प्राप्त होता है न परम गति को प्राप्त होता है, न सुख को प्राप्त होता है और इसलिए तुम्हारे लिए कर्त्तव्य की अवस्था में क्या करना है और क्या नहीं करना है इस दृष्टि से केवल शास्त्र ही प्रमाण हैं, इसी को जानकर तुम शास्त्र विधि के अनुसार काम करो।

इस प्रकार अचानक ही श्रीभगवान ने नए शास्त्रों की बात कही तो अर्जुन के मन में प्रश्न आया कि क्या शास्त्र इतने महत्त्वपूर्ण हैं? अभी तक तो आप श्रद्धा की ही बात कर रहे थे। आपने पूरी गीता में अनेक स्थानों पर श्रद्धा का वर्णन किया और अब इस स्थान पर आपने शास्त्रों को सबसे ऊपर रख दिया। फिर अर्जुन भगवान से प्रश्न करते हैं-

17.1

अर्जुन उवाच
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य, यजन्ते श्रद्धयान्विताः|
तेषां(न्) निष्ठा तु का कृष्ण, सत्त्वमाहो रजस्तमः||17.1||

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्र-विधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक (देवता आदि का) पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी-तामसी

विवेचनः- अर्जुन के मन में आया कि मुझे तो फिर भी शास्त्र पता है। आज के बाद लर्नगीता के श्लोक लोग सुनेंगे तो उन्हें लगेगा कि हमें तो शास्त्रों के बारे में कुछ ज्ञान ही नहीं है इसीलिए अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान से प्रश्न किया तो अर्जुन बोले-हे कृष्ण! भगवान को अर्जुन का पार्थ नाम सबसे प्रिय है। गीता में भगवान ने अर्जुन को नौ बार पार्थ शब्द से पुकारा परन्तु अर्जुन को भगवान का सबसे प्रिय सम्बोधन है कृष्ण।
अर्जुन कहते हैं-हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्र विधि का त्याग करता है या वह जानता नहीं है इसलिए उसकी उपेक्षा करता है। अर्जुन ने कहा कि शास्त्र विधि से तो नहीं परन्तु श्रद्धा से देवों का पूजन करता है तो उनकी स्थिति कौन सी होती है? क्या वह सात्त्विक है? क्या वह राजसिक है या फिर वह तामसिक है?
श्रद्धा का अर्थ क्या है? क्योंकि यह अध्याय ही **श्रद्धात्रयविभागयोग** है।

अर्थात् तीन प्रकार की श्रद्धा।
भगवान ने यहाँ पर श्रद्धा का अद्‌भुत विस्तार किया और सारा खजाना हमारे लिए खोल कर रख दिया। श्रद्धा का जब हम संस्कृत में विग्रह करेंगे तो
श्र + द्धा
श्रद् अर्थात् सत्य, ध अर्थात् मार्ग।
अर्थात् सत्य की ओर जाने वाला मार्ग।
यदि श्रद्धा का विलोम देखना है तो हो जाएगा शङ्का।

भगवान ने चौथे अध्याय में कहा -
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।4.39।।

ज्ञान उसी को प्राप्त होता है जो श्रद्धावान होता है। जिसमें श्रद्धा नहीं है उसे न तो ज्ञान और न ही भक्ति प्राप्त होगी। श्रद्धा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है जिसे शङ्का होती है उसे श्रद्धा नहीं होती और जिसे श्रद्धा होती है उसे शङ्का नहीं होती। यह दोनों एक साथ नहीं होते है परन्तु दोनों में से एक तो अवश्य ही होती है।

एक शायर ने कहा-
संदेह करके तिल तिल मरने से अच्छा है यकीन करके बेवफाई से मर जाएँ।
मनुष्य को सावधान रहना चाहिए परन्तु विश्वासी होना चाहिए।

रामायण में एक प्रसङ्ग आता है चित्रकूट में भगवान आए और भरत जी भगवान को मनाने के लिए चित्रकूट चलें। चतुरङ्गिणी सेना, सारी रानियाँ और वशिष्ठ जी भी साथ चले और अयोध्या के बहुत सारे निवासी भी, हजारों लोग एक साथ चित्रकूट चले। भीलों ने लक्ष्मण जी को समाचार दिया कि अयोध्या की सेना यहाँ आ रही है। उनके मन में सन्देह हो गया कि यह कैसे हो सकता है? भरत को मिलने आना तो समझ आता है, सेना लेकर क्यों आ रहे हैं? जरूर भरत की नीयत में खोट आ गया है और भरत हम दोनों को मारने के लिए अयोध्या की सेना लेकर आ रहे हैं ताकि चौदह वर्ष नहीं, पूरे जीवन के लिए उनको राज मिल जाए। लक्ष्मण जी भागते हुए राम जी के पास आए और कहा कि जो माता कैकई ने किया। परन्तु भरत भी उस षड्यन्त्र में सम्मिलित थे और अब वह पूरी सेना लेकर हम दोनों को मारने के लिए यहाँ आ रहे हैं।
लक्ष्मण जी को तो शङ्का हो गई परन्तु श्री राम जी मुस्कुराने लगे तो लक्ष्मण जी को लगा कि भगवान को मेरी बात समझ नहीं आई।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई।
गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी।
सहज छमा बरु छाड़ै छोनी॥1॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई।
होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥2।।

अर्थात् लक्ष्मण तुम भरत के बारे में ऐसी बातें क्यों कर रहे हो? तुम भरत को जानते नहीं हो। अयोध्या के राज की तो क्या बात है? ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का पद भी मिलता होगा तो भी भरत को राज्य का लोभ नहीं हो सकता। यह सम्भव है, कभी अन्धकार सूर्य को निगल जाए। यह भी हो सकता है कि आकाश बादलों में समा कर मिल जाए, पृथ्वी भी चाहे स्वाभाविक क्षमाशीलता छोड़ दे, हो सकता है मच्छर की फूँक से सुमेरु पर्वत उड़ जाए, परन्तु भैया लक्ष्मण! भरत को राज्य का लोभ नहीं हो सकता है। लक्ष्मण मैं तुम्हारी शपथ और पिताजी की सौगंध खाकर कहता हूँ कि भरत के समान पवित्र भाई संसार में दूसरा कोई नहीं है।

अब श्रद्धा का विचार करते हैं लक्ष्मण जी चौदह वर्ष के लिए अपना सारा सुख छोड़कर भगवान की सेवा में साथ आए, चौदह वर्ष तक सोए भी नहीं। पूरा दिन भगवान की सेवा करते हैं और रात में बैठकर भगवान की रक्षा करते हैं और ऐसे में भी भगवान लक्ष्मण से कहते हैं कि भरत के समान दूसरा भाई नहीं है? भगवान की श्रद्धा में शङ्का का कोई मूल्य नहीं है, वे भरत जी के स्वभाव को भली भाँति जानते हैं।

जहाँ श्रद्धा है वहाँ शङ्का नहीं ।।
जहाँ शङ्का है वहाँ श्रद्धा नहीं।।

एक बार गाँधी जी को किसी वामपन्थी ने पूछा कि आप इतने पढ़े लिखे हो, लन्दन से बैरिस्टर बने हो, आप रामायण, गीता के बारे में बातचीत करते हैं। आपको यह काल्पनिक नहीं लगता है क्या? क्या यह आपको सत्य लगता है?
गाँधी जी ने कहा कि जिस ग्रन्थ के एक पात्र के कुछ चित्र देखने मात्र से, (उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र की मूक फिल्म बायोस्कोप में देखी थी और उसके बाद गाँधी जी ने) यह प्रण कर लिया था कि मैं आज के बाद झूठ नहीं बोलूँगा तो इससे बढ़कर और क्या सत्य हो सकता है?

गाँधी जी की श्रद्धा की एक और बात बताते हैं -
जब वे लन्दन पढ़ने जा रहे थे उस समय पानी के जहाज से जाना पड़ता था। जिस प्रकार आजकल एल. आई. सी. वाले होते हैं उस समय जहाज में बीमा प्रतिनिधि घूमते थे कि पानी के जहाज में जा रहे हो, यह बहुत खतरे का सफर है। आधे जहाज डूब जाते हैं तो आप अपने परिवार का बीमा करवा लो तो गाँधीजी ने उसके जाल में फँसकर पाँच हजार का बीमा करवा लिया। जब उन्होंने विचार किया कि यह तो मैंने बहुत गलत काम कर दिया कि यदि मैं न भी रहूँ तो मेरे भाई या परिवार के लोग मेरे बच्चों का ख्याल नहीं रखेंगे क्या? मैंने यह बीमा करवा कर अपने परिवार के साथ विश्वासघात किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सबसे पहले अपने भाई को तार किया कि मुझसे बहुत भूल हो गई है मैंने बीमा करवाया है आप कृपा पूर्वक जाकर उस पॉलिसी को निरस्त करवा दीजिए।

एक शब्द है श्रद्धा और एक शब्द है विश्वास
श्रद्धा और विश्वास में क्या अंतर है ?

आप्त वचनों पर और शास्त्र वचनों पर जो हमें विश्वास होता है, वह श्रद्धा होती है। आप्त वचन अर्थात् महापुरुषों के, आचार्यों के, सन्तों के वचन।

शास्त्र वचन अर्थात् जो हम शास्त्रों में पढ़ते हैं। रामायण, महाभारत परन्तु वही वचन जब मेरे अनुभव में आ गए तो वह श्रद्धा, विश्वास में बदल जाते हैं और इसलिए मानस में गोस्वामी जी ने इसका बहुत सुन्दर प्रयोग किया है उन्होंने अनेक स्थानों पर श्रद्धा का और अनेक स्थानों पर अनुभव का प्रयोग किया।

पार्वती जी को जब शिवजी कहते हैं-

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।

सत हरि भजनु जगत् सब सपना॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा।

पंपा नाम सुभग गंभीरा॥3॥

विवेक चूड़ामणि में भगवान शङ्कराचार्य ने श्रद्धा की परिभाषा दी -

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यावधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिरया वस्तुपलाभ्यते।। 25 ।।

शास्त्र और गुरु वचनों में शुद्धता का धारण करना ही श्रद्धा है। शिष्य का गुरु पर विश्वास करने को ही श्रद्धा कहा गया है। गुरु विश्वास की प्रतिमूर्ति होनी चाहिए। गुरु शब्द की दीक्षा लेते ही हम बिक जाते हैं।

गोस्वामीजी ने जब मानस का आरम्भ किया-
बालकाण्ड के पहले श्लोक में स्तुति और दूसरे श्लोक में कहा

भवानी-शंकरौ वन्दे श्रद्धा-विश्वास रूपिणौ ।
याभ्याँ विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।

मैं जगत जननी की स्तुति करता हूँ पार्वती जी की और भगवान शिव शङ्कर की स्तुति श्रद्धा और विश्वास के रूप में करता हूँ। पार्वती श्रद्धा, शङ्कर विश्वास। शिवजी को गुरु के रूप में भी कहा तो गुरु विश्वास का प्रतीक है और पार्वती जी शिष्य रूप में उपस्थित हैं। पार्वती जी ने शिव जी की शिष्य रूप में उपासना की थी कि मुझे राम कथा सुनाइए तो श्रद्धा शिष्य रूप में है। पूरी रामायण गुरु ने शिष्य को सुनाई और विश्वास ने श्रद्धा को।

शिवजी ने पार्वती जी को सुनाई।
बालकाण्ड में एक प्रसङ्ग है उसका वर्णन आता है -

एक बार त्रेता जुग माहीं।
संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी।
पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥

शिवजी राम कथा के रसिक हैं या उन्हें कोई सुनने के लिए मिल जाए या सुनाने के लिए। वह दोनों में राजी रहते हैं।
एक बार त्रेता युग में शिवजी के मन में आया कि राम कथा सुननी है। अगस्त्य मुनि जी के आश्रम में शिवजी पधारे। जब सती जी भी साथ में थी जब अगस्त्य मुनि ने दोनों को साथ में देखा तो तो पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाया। शिवजी ने कहा कि मैं तो कथा सुनने आया हूँ तो मुनि बोले कि भगवान की कथा सुनना और कहना इससे बड़ी क्या बात हो सकती है! और वह श्रद्धा से राम कथा उन्हें सुनाते हैं शिवजी सुनते रहते हैं -

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा।
कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी।
चले भवन सँग दच्छकुमारी॥

लेकिन जब अगस्त्य मुनि शिवजी को कथा सुना रहे थे तो वे दोनों तो एक आसन में बैठकर कथा सुनते थे लेकिन सती को ज्यादा आनन्द नहीं आ रहा था तो शिवजी को लगा कि सती को अभी श्रद्धा नहीं है।

सती को लगता है कि मैं साक्षात महादेव की पत्नी मेरे पति से कोई ज्ञान प्राप्त करे तो बनता है परन्तु यह यहाँ बैठकर पता नहीं किसकी कथा सुन रहे हैं। जब सती को श्रद्धा ही नहीं तो गोस्वामी जी ने भी सम्बोधन बदल दिया। जब वह साथ गई थी तो उन्होंने लिखा था-

संग सती जगजननी भवानी।
पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी।।

और जब वापस आए तो तब मुनि से शिवजी ने विदा माँगी तो

मुनि संग बिदा मागि त्रिपुरारी।
चले भवन! संग दच्छ कुमारी।।

शिवजी और सती वापस कैलाश चले गए। शिवजी को यह तो अच्छा नहीं लगा कि इसे राम कथा अच्छी नहीं लगी परन्तु वह बोले नहीं।

त्रेतायुग में भगवान राम की लीला चल रही है। सीताजी का अपहरण हुआ है और रामजी हे सीता! हे सीता! कहते हुए रोते हुए वन में घूम रहे हैं। वह कभी पत्तियों से, फूलों से, पेड़ों से, मृगों से पूछते हैं कि क्या तुमने सीता जी को देखा? शिव जी ने जब इस लीला को आकाश मार्ग से देखा तो शिवजी वहाँ रुक गए, तो पार्वती जी को लगा कि इन दो साधारण मनुष्यों को देखने के लिए भगवान यहाँ किस लिए रुके। भगवान ने दूर से उन्हें देखा तो उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। मेरा कितना बड़ा भाग्य है अभी तो मैं कथा सुनकर आया और अभी मुझे भगवान के दर्शन हो गए। महादेव जी राम जी के परम भक्त हैं।

संभु समय तेहि रामहि देखा।
उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी।
कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥1॥

शिवजी भगवान ने उन्हें दूर से ही प्रणाम किया और फिर वहीं अपने दोनों हाथ उठाकर कहा-

जय सच्चिदानन्द जग पावन।
अस कहि चलेउ मनोज नसावन।
चले जात सिव सती समेता।
पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता।

उन्होंने तीन बार जय सच्चिदानन्द बोलकर उनको प्रणाम किया। पार्वती जी को लगा कि यह क्या बात है कि एक साधारण मनुष्य को देखकर प्रणाम करते हुए जय सच्चिदानन्द कर रहे हैं तो सती ने सन्देह प्रकट किया तो शिव जी ने सती से कहा कि यह परम ब्रह्म परमात्मा हैं। हम जिनकी कथा सुनकर आए हैं यह वही परम ब्रह्म परमात्मा है। यह उनकी लीला है इसलिए मैं उनके पास जाकर प्रणाम नहीं कर सकता, पर मैं उन्हें देखकर धन्य हो गया। शिव जी ने कहा कि तुम्हें मेरी बात पर सन्देह नहीं करना चाहिए परन्तु सती नहीं मानी तो शिव जी ने कहा कि यदि तुम्हें मेरी बात पर भरोसा नहीं है तो तुम उनकी परीक्षा ले लो। सती ने कहा ठीक है-

इहाँ संभु अस मन अनुमाना।
दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं।
बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥3॥

शिवजी ने कहा यह मेरी बात नहीं मान रही है इसका कल्याण नहीं होगा। मेरे कहने पर भी इसका संशय नहीं जा रहा है तो विधान इसके विपरीत है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-
होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा।
गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

शिवजी यह बोलकर समाधि में बैठ गए कि जो होगा वह सब राम के द्वारा ही रचा गया है और सती राम जी के पास पहुँची और सोचने लगी कि कैसे परीक्षा लूँ फिर उन्होंने सोचा कि यह हे सीता! हे सीता! कह कर घूम रहे हैं मैं सीता का ही रूप बना लेती हूँ और जैसे ही मैं सीता का रूप लेकर उनके पास जाऊँगी यह मेरी तरफ आएँगे और भगवान की बात झूठी हो जाएगी कि यह परम ब्रह्म परमात्मा है फिर सती ने सीता जी का रूप धारण किया और जिस रास्ते में भगवान राम जा रहे थे। उसी मार्ग पर सती जी खड़ी हो गईं। जैसे ही लक्ष्मण जी ने दूर से सती को देखा -

लछिमन दीख उमाकृत बेषा।
चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा।।
कहि न सकत कछु अति गंभीरा।
प्रभु प्रभाव जानत मति धीरा।

तो वह चकित हो गए की सती सीता जी का रूप बनाकर क्यों आ रही हैं भगवान ने भी सती को देखा। तुरन्त सारी बात जान गए उन्होंने अपनी माया को याद किया कि धन्य है सती को ही अपने जाल में फँसा दिया।

निजमाया बनो हृदय बखानी
बोले विहंसी राम मृदु वाणी।

राम जी रोते-रोते सती को देखकर हँसते हुए बोले -

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू।
पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू।
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

राम जी ने दोनों हाथ जोड़कर सती जी को प्रणाम किया और कहा कि मैं दशरथ का पुत्र राम हूँ। मेरे साथ मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। हम दोनों आपको प्रणाम करते हैं और भगवान महादेव कहाँ है? आप इस जङ्गल में अकेली कहाँ घूम रही हो? यह सुन कर सती के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। उनकी कल्पना के अनुसार वह सीता को देख कर मेरी ओर आएँगे परन्तु यह मुझे प्रणाम करते-करते भी यह जानते हैं कि मैं कौन हूँ? अब सती ने विचार किया।

मैं संकर कर कहा न माना।
निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा।
उर उपजा अति दारुन दाहा॥1॥

मैंने शिवजी की बात नहीं मानी और राम जी पर सन्देह किया। अब मैं जाकर क्या उत्तर दूँगी? सती के हृदय में बहुत दुःख उत्पन्न हुआ। राम जी सती के हृदय की बात समझ रहे थे। उन्होंने सोचा इनको थोड़ा नाटक दिखा दूँ।

जाना राम सतीं दुखु पावा।
निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा।
सतीं दीख कौतुकु मग जाता।
आगें रामु सहित श्री भ्राता।

राम जी ने अपना प्रभाव प्रकट किया। सती वहाँ से भाग गईं। जिस भी मार्ग से सती भाग रही थी तो वहाँ से भगवान राम, लक्ष्मण और जानकी जी दिखाई दे रहे थे। चारों ओर राम, लक्ष्मण, जानकी को देखकर सती हैरान हो गई। जब सती एक जगह खड़ी हो गई तो उन्होंने देखा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी राम जी के चरणों की स्तुति कर रहे थे और सती ने सभी सन्त, महात्मा जीव सबको राम जी की सेवा में खड़े देखा। उनका हृदय काँपने लग गया वह अपनी सुध बुध भूल गईं और अन्त में आँख बन्द करके उस मार्ग पर बैठ गईं तो राम जी ने कहा, अब तो हमारा काम हो गया अब अपनी लीला करते हुए आगे बढ़ते हैं। थोड़ी देर बाद सती ने आँखें खोल कर देखा तो जो भगवान ने माया फैलाई थी, सब समाप्त हो गई। अब सती वापस शिव जी के पास आई। जहाँ पर शिवजी राम नाम का जाप कर रहे थे उन्होंने सती से पूछा क्या हुआ? सती ने कहा कुछ नहीं हुआ। बुद्धि की विपरीतार्था के कारण महादेव से भी झूठ बोलने लगीं। सती भी उस माया के प्रभाव से नहीं बचीं और झूठ बोलने लगीं। सती ने कहा -

कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं।
कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥1॥

मैंने कोई परीक्षा नहीं ली जैसे आपने प्रणाम किया था मैं भी वैसे ही प्रणाम करके आ गई।
भगवान शिव ने जब ध्यान किया तो ध्यान में उन्होंने जो सती ने किया था वह देखा और कहा कि हे सती! तुमने अनर्थ कर दिया। जानकी जी मेरी माता के समान है और भगवान राम मेरे पिता। तुमने मेरी माता का रूप धर लिया। अब तुम मेरी पत्नी नहीं हो सकती। उन्होंने बस मन में विचार किया कि आज जो कुछ आपने किया, अब मैं कभी पत्नी के रूप में आपको स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि आपने माता जानकी का वेश धर लिया। अब आप पत्नी के रूप में मेरे लिए स्वीकार्य नहीं हो। शिवजी की इस भक्ति को देखकर देवताओं ने उन पर पुष्प बरसाए। उस समय अपराध बोध अवस्था में सती ने शिवजी से कुछ नहीं पूछा और दोनों वापस चले गए।

कुछ दिनों बाद दक्ष के यहाँ कथा हुई तो दक्ष ने शिव जी को नहीं बुलाया। सती ने कहा कि मुझे पिता के यहाँ जाना है। शिव जी ने कहा जहाँ बुलाया नहीं है वहाँ नहीं जाना चाहिए। सती ने कहा पिता के यहाँ कौन सा बुलावे की आवश्यकता होती है तो शिवाजी ने सोचा कि यह समझाने से तो मानेगी नहीं तो उन्होंने कहा ठीक है तुम जाओ मैं नहीं जाऊँगा। शिवजी ने अपने गणों के साथ सती को दक्ष के घर भेज दिया। सती ने वहाँ देखा कि सभी देवताओं के लिए स्थान है परन्तु शिव जी के लिए वहाँ पर कोई भाग नहीं रखा था। यह देखकर सती को बहुत अपमान लगा। उन्होंने दक्ष को श्राप दिया और शिव जी के गणों ने दक्ष के यज्ञ का विनाश कर दिया। सती ने सोचा कि पहले मैंने शिवजी की बात नहीं मानी थी तो उन्होंने मेरा त्याग कर दिया था अब मैंने उनका फिर अपमान करवाया। अब मैं इस शरीर से उनके पास वापस नहीं जा सकती तो सती ने वहीं पर आत्मदाह कर लिया। उन्होंने योग अग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। जैसे ही सती का शरीर जला तो शिवजी वहाँ प्रकट हो गए और उनका शरीर लेकर भगवान शिव जी ने वहाँ पर ताण्डव किया। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस हुआ। सती का शरीर समाप्त हआ और जहाँ-जहाँ सती के शरीर के भाग गिरे वहाँ-वहाँ उसी प्रकार की शक्तिपीठ उत्पन्न हो गई। सती ने अपने कलेवर का त्याग किया क्योंकि उन्हें मालूम था अब शिव जी उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। फिर उन्होंने पार्वती के रूप में हिमालय की कन्या के रूप में जन्म लिया। जब वह युवा हुई तो पिता को उसके विवाह की चिन्ता हुई। नारद मुनि ने वहाँ जाकर पार्वती को उपदेश किया कि तुम्हारा जीवन तो शिवजी की प्राप्ति के लिए हुआ है और तुम महादेव को तपस्या से प्रसन्न करके वर के रूप में प्राप्त करो। पार्वती जी ने कठोर तपस्या की। हजारों वर्ष तक एक पैर पर खड़े रहकर तपस्या की। अन्न-जल का त्याग किया और वायु का भी त्याग कर दिया तो उन्हें अपर्णा नाम से भी पुकारा जाता है।

इस प्रकार कठोर तपस्या से जब महादेव प्रसन्न हुए और उनका विवाह हुआ तो पार्वती जी शिवाजी के पास आकर बैठी। शिव जी के विवाह की कथा भी बड़ी रोचक है, उनके जैसी बारात किसी की भी नहीं हो सकती। बाद में पार्वती जी ने कहा कि हे महादेव! पिछले जन्म में मुझसे बहुत बड़ी भूल हुई थी। मैंने राम नाम की कथा नहीं सुनी जो आपने मुझे समझाया, वह मैंने नहीं माना और इस कारण मुझे अपने कलेवर का त्याग करना पड़ा परन्तु अब मैं पूरी श्रद्धा से युक्त होकर आपके सामने बैठी हूँ।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।
बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं।
राज तजा सो दूषन काहीं।।

अब आप श्रद्धापूर्वक मेरी इस प्रार्थना को सुनकर मुझे राम कथा सुनाइए। शिवाजी ने देखा कि पार्वती श्रद्धापूर्वक बैठी है तो उन्होंने राम कथा का प्रारम्भ किया। वैसे ही राम कथा रामचरित्र मानस में तुलसीदास जी ने पन्द्रहवीं शताब्दी में हम लोगों के लिए लिखी जो शिवजी ने पार्वती जी को सुनाई जो वाल्मीकि जी ने लिखी थी वह अपने तरीके से लिखी थी। परन्तु यह जो राम कथा है यह शिवजी ने पार्वती जी को सुनाई। श्रद्धा से पार्वती जी ने पुनः अपना स्थान प्राप्त किया। वह श्रद्धा के नाश होने पर अपने स्थान से गिरी और श्रद्धा रखकर वापस उसी स्थान को प्राप्त किया।
भगवान से पूछा कि श्रद्धा में जो तीन प्रकार की श्रद्धा है वह शास्त्रों में युक्त न हो वह श्रद्धा से युक्त हो। वह सात्त्विक है या राजसिक है या तामसिक है? आगे भगवान कहते हैं-

17.2

श्रीभगवानुवाच
त्रिविधा भवति श्रद्धा, देहिनां(म्) सा स्वभावजा|
सात्त्विकी राजसी चैव, तामसी चेति तां(म्) शृणु||17.2||

श्री भगवान बोले - मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी तथा राजसी और तामसी - ऐसे तीन तरह की ही होती है, उसको (तुम) मुझसे सुनो।

विवेचन:- भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! मनुष्य के संस्कारों से यह श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीनों प्रकार की हो सकती है। हे अर्जुन! इस अध्याय में मैं तुम्हें तीनों ही विस्तार से सुनाता हूँ। किन कारणों से मनुष्य शास्त्र विधि का त्याग करता है।
पहला - अज्ञेयता
अर्थात् पता नहीं होना। हवन करना है, कौन सी लकड़ी से करना है जो मिली उसी से कर लिया। अज्ञेयता से कर लिया तो क्षमा मिल सकती है।

दूसरा - उपेक्षा
मालूम था। पण्डितजी ने बताया था आम की लकड़ी से हवन करना है। आम की लकड़ी तो मिली नहीं। दूसरी लकड़ी से ही कर लिया कि क्या फर्क पड़ता है। मालूम तो था पर उपेक्षा से जो मिला वह ले आए। उपेक्षा से कर्म फलहीन हो जाता है।

तीसरा- विरोध
कहा तो है आम की लकड़ी लानी है परन्तु पण्डितों के भी अपने ही नाटक हैं। उसे पता ही नहीं है कि शास्त्रों में क्या लिखा है। वह कहता है कि कहाँ लिखा है कि आम की लकड़ी से ही हवन करना है। मैं तो किसी भी लकड़ी से कर दूँगा। यह विरोधी है और दण्ड का पात्र बनता है।

तीनों ही लोगों ने आम की लकड़ी नहीं ली परन्तु एक को तो पता ही नहीं था उसे क्षमा मिल जाएगी।
दूसरा उपेक्षा के कारण नहीं लाया। वह फलहीन हो जाएगा। तीसरा जो विरोध करके दूसरी लकड़ी लाया उसे दण्ड का भागी बनना पड़ेगा।

भगवान कहते हैं श्रद्धा के तीन स्रोत हैं-
स्वभावजा
संगजा
शास्त्रजा
हमारे मन में प्रश्न आता है कि श्रद्धा उत्पन्न कैसे होती है? भगवान कहते हैं, यह तीन प्रकार से उत्पन्न होती है।

1) **स्वभावजा:-**
पूर्व जन्मों के कारण, हमारे पूर्वजों के स्वभाव से हम में श्रद्धा उत्पन्न होती है। हमने इस बारे में कोई पढ़ा नहीं है परन्तु जिस घर में हमारा जन्म हुआ है उस घर की परम्परा के अनुसार हमारे अन्दर श्रद्धा जागृत हो जाती है।

2) **शास्त्रजा:-**
हम किस घर में पैदा हुए हैं? इससे कोई मतलब नहीं।
प्रह्लादजी भी हिरण्य कश्यप के घर पैदा हुए, परन्तु शास्त्र पढ़ लिए और उससे उनके मन में भगवान नारायण के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। रामायण की कथा, भगवद्गीता या श्रीमद्भागवत की कथा सुनी। अपने आप ही इन शास्त्रों के सङ्ग से हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तो यह शास्त्रजा श्रद्धा होती है।

3) **सङ्गजा:-**

अच्छे लोगों के सङ्ग से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।
जब गरुड़ जी ने शिवजी से प्रश्न किया कि मुझे सन्देह हो रहा है कि राम जी कैसे भगवान हैं? शिव जी ने गरुड़ से कहा कि जो पक्षियों में निष्कृष्ट काग भूषुण्डी जी को लेकर आओ परन्तु याद रखना थोड़े सङ्ग से काम नहीं बनेगा।

जब बहु काल करिय सतसंगा।
तब ही होई सब संसय भंगा।।

हमें लगता है कि थोड़ी सी गीता पढ़ ली। थोड़ा विवेचन पढ़ लिया तो सब सत्सङ्ग हो जाएगा। यह नहीं हो सकता। हमें यह दीर्घकाल तक करना पड़ेगा। थोड़े काल में की गई श्रद्धा से कुछ नहीं होगा।
जिस प्रकार एक कटोरी में पानी लेंगे और उसमें थोड़ा सा तेल डाल देंगे फिर उसमें अङ्गुली डुबाएँगे तो केवल ऊपर ही तेल लगेगा बाकी अङ्गुली में पानी ही रह जाएगा। परन्तु पन्द्रह दिन इस पात्र को ऐसे ही छोड़ दो फिर उसमें दोबारा से अङ्गुली डालिए तो इतने दिनों बाद तेल पानी के हर स्थान पर व्याप्त हो गया तो जब हम अङ्गुली डालेंगे तो उस पर जल और तेल दोनो ही आ जाएँगे। इसीलिए जब तक दीर्घकाल तक सङ्ग नहीं होगा तब तक सङ्गजा श्रद्धा का प्रभाव नहीं आ सकता।

17.3

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत|
श्रद्धामयोऽयं(म्) पुरुषो, यो यच्छ्रद्धः(स्) स एव सः||17.3||

हे भारत ! सभी मनुष्यों की श्रद्धा अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय है। (इसलिये) जो जैसी श्रद्धावाला है, वही उसका स्वरूप है अर्थात् वही उसकी निष्ठा (स्थिति) है।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं- हे भारत! यहाँ पर भगवान ने बहुत ही महत्वपूर्ण सूत्र दिया है कि सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। इसलिए जो जैसी श्रद्धा वाला होता है वह वैसा ही होता है। श्रीभगवान कहते हैं कि जिसकी जैसी श्रद्धा है उसका वैसा ही स्वरुप है। सभी मनुष्य को दो आँख, दो कान, एक नाक, एक मुँह, दो हाथ, दो पैर मिले हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि एक अन्तर है, सबकी श्रद्धा अलग-अलग है और जिसकी जैसी श्रद्धा है वह मनुष्य वैसा ही है। जिसकी श्रद्धा पैसे में है, पूरे जीवन पैसे के पीछे भागता रहता है। जिसकी श्रद्धा मकान, बेटों में है वह इसमें ही खुश रहता है। जिसकी श्रद्धा शास्त्रों में है वह शास्त्र ही पढ़ता है। श्रद्धा के अनुसार ही मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व बनता है।

कथा
एक बार एक राजा ने एक मूर्तिकार को बुलाया। बहुत ही प्रसिद्ध मूर्तिकार था। बहुत सुन्दर मूर्तियाँ बनाता था। वह पत्थरों से बात करता, पत्थर उससे बात करते थे। पत्थर से बात कर-कर के उनका स्वभाव जान गया था। राजा ने कहा, मुझे भगवान का एक सुन्दर मन्दिर बनाना है। तुम एक अच्छे कारीगर हो, कितना भी समय लगे तो मेरे राज्य के लिए द्वारकाधीश की एक ऐसी सुन्दर मूर्ति बनाओ, जिससे दूर-दूर के राज्य से लोग उस प्रतिमा को देखने के लिए आएँ।

मूर्तिकार ने कहा- बना तो सकता हूँ पर इतना बढ़िया पत्थर भी तो मिलना चाहिए। राजा ने कहा, चिन्ता मत करो। मेरे पास धन की कमी नहीं है। तुम्हें जैसा पत्थर चाहिए, मुझे बताओ मेरे सैनिक दूर-दूर जाकर वैसा पत्थर ढूँढ कर ले आएँगे। मूर्तिकार ने सैनिकों को बता दिया। सैनिक जहाँ-जहाँ पत्थर मिलते हैं, वहाँ - वहाँ गए। जैसा मूर्तिकार ने बताया उन्होंने उस अनुमान के सैकड़ो पत्थर लाकर इकट्ठे कर लिए। मूर्तिकार ने उन पत्थरों को देखा और उनमें से चार पत्थरों को चुनकर अपने साथ ले आया। मूर्तिकार ने उन चारों पत्थरों को लाकर अपने कमरे में रखा और पहले पत्थर को अपने औजार से छेड़ना शुरू किया परन्तु जैसे ही पहले पत्थर पर अपनी छैनी और हथौड़ी से ठोका। पत्थर से आवाज आई मुझे तुम्हारी मूर्ति नहीं बनना है कोई और पत्थर चुनो। मैं तो खुश हूँ। मूर्तिकार ने उस पत्थर को किनारे रख दिया फिर दूसरा पत्थर उठाया, उस पर छैनी लगानी शुरू की और छह महीने तक उसको चिकना कर दिया परन्तु छह महीने बाद उस पत्थर से आवाज आई कि अब रहने दो मुझे तुम्हारी मूर्ति नहीं बनना है, तुम मुझे छोड़ दो। मूर्तिकार ने उस पत्थर को भी किनारे कर दिया। तीसरा पत्थर लाया और एक वर्ष तक उस पत्थर को चिकना करके आकार देना शुरू किया तो एक वर्ष बाद वह पत्थर बोला। मूर्तिकार मुझे छोड़ दो। मैं सोच

तो रहा था कि तुम जैसा चाहोगे बन जाऊँगा परन्तु अब यह छेनी की चोट नहीं सही जा रही है। मूर्तिकार ने उस पत्थर को भी छोड़ दिया। वह चौथे पत्थर के पास पहुँचा और उसका स्पर्श किया तो उसमें मूर्तिकार को अद्‌भुत अनुभूति मिली। पत्थर से आवाज आई मूर्तिकार सबसे आखिर में तुमने मुझे छुआ। मैं तो तड़प रहा था कि तुम मुझे कब स्पर्श करोगे। मैं समर्पित हूँ। तुम बिल्कुल चिन्ता मत करना। मैं उफ्फ नहीं करूँगा। तुम मुझे जैसे गढ़ना चाहोगे वैसे गढ़ लो। मैं तुम्हारी सेवा में प्रस्तुत हूँ। तुम मुझे वही बनाओ जो तुम बनाना चाहते हो। मूर्तिकार प्रसन्न हो गया। वह दिन रात उस पत्थर पर काम करने लगा। छह महीने बाद वह पत्थर अत्यन्त विलक्षण आकार में दिखने लगा। लगभग एक वर्ष में मूर्तिकार ने जब उस मूर्ति के दर्शन किए तो वह प्रसन्न हो गया। आज तक उसने जितनी भी मूर्तियाँ बनाई थी वह सबसे सुन्दर बनी थी। भगवान द्वारकाधीश की ऐसी मूर्ति निर्माण होकर आई। लगता है कि अभी बोल पड़ेगी।

इसी प्रकार हम अयोध्या के राम जी की मूर्ति को देखते हैं तो वह भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि अभी बोल पड़ेगी। मूर्तिकार ने अपनी ही बनाई हुई मूर्ति को दण्डवत किया। कहा - ए पत्थर! तेरे समर्पण को प्रणाम है। यदि तुम समर्पित न होते तो मैं कभी भी भगवान को उसमें उकेर नहीं सकता था। राजा को बुलाकर मूर्ति दिखाई। राजा उस अद्‌भुत मूर्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हो गए अपने गले का हार उतारकर मूर्तिकार को पहना दिया। मूर्ति को दण्डवत प्रणाम किया। मन्दिर बनाया गया। गर्भगृह में भगवान की स्थापना हुई, पूरे राज्य में उत्सव हुआ। सब लोग दूर-दूर के राज्यों से उस मूर्ति के दर्शन करने आए।

वह एक सामान्य पत्थर था परन्तु अपने समर्पण से भगवान बन गया। उसे तरह-तरह के भोग लगाए जाते, दूर-दूर से महँगे पुष्प मँगाकर उनको सजाया जाता। अब वह साधारण पत्थर नहीं रह गया था। अब वह साक्षात भगवान बन गया था। समर्पण की श्रद्धा ने साधारण पत्थर को भी भगवान बना दिया। जो एक बरस के पत्थर का आकार आ गया था उसे भी शेर बनाकर मन्दिर पर लगा दिया और जिस पत्थर ने पहली हथौड़ी मारने के बाद रोक दिया था उस पत्थर की रोड़ी बनाकर मन्दिर के मार्ग पर लगा दिया। पत्थर तो वही थे श्रद्धा के कारण मार्ग बना, एक मन्दिर की सीढ़ियों पर लगा। एक मन्दिर का सजावट करने वाला बन गया और जो श्रद्धावान था वह स्वयं भगवान बन गया। भगवान के रूप में उसकी प्रतिष्ठा हो गई।

हम सभी मनुष्य हैं कोई साधारण सा जीवन जी कर चला जाता है। कोई अपने जीवन से कुछ लोगों का लाभ कर जाता है। कोई अपने जीवन में बहुत से काम करके महापुरुषों के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। कुछ-कुछ सन्त के रूप में हमारे लिए पूजनीय हो जाते हैं। हमें अपने जीवन को कैसे बनाना है। जैसे हमारी श्रद्धा होगी, जीवन भी उसी प्रकार का होगा। व्यक्ति की श्रद्धा भोग में होती है, सन्त की श्रद्धा भाव में होती है और ज्ञानी की श्रद्धा तत्त्व में होती है।

17.4

यजन्ते सात्त्विका देवान्, यक्षरक्षांसि राजसाः|
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः||17.4||

सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजस मनुष्य यक्षों और राक्षसों का और दूसरे (जो) तामस मनुष्य हैं, (वे) प्रेतों (और) भूतगणों का पूजन करते हैं।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं- हे अर्जुन! सात्त्विक पुरुष देवों की पूजा करते हैं, राजसिक पुरुष यक्ष और राक्षसों की पूजा करते हैं और तामसिक पुरुष भूतों की पूजा करते हैं। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह उसी प्रकार के देवता की उपासना करता है।
हमें भी पता होता है वर चाहिए तो सोमवार का व्रत रख लो। शक्ति चाहिए तो मङ्गलवार को हनुमान जी की उपासना कर लो। हम सब अपनी रुचि से अपनी श्रद्धा से देवताओं को चुनते हैं। स्थूल शरीर सबका एक जैसा है। मन सबके अलग है। किसी ने पानी से पूछा तुम्हारा रङ्ग कैसा है? पानी ने कहा कि जिससे मिल जाऊँ उसी के जैसा हो जाता हूँ।
भजन -
तोरा मन दर्पण कहलाए
भले बुरे सारे कर्मों को देखें और दिखाएं।

मन तो एक दर्पण है जैसी हमारी श्रद्धा होती है वैसा ही बन जाता है और वैसा ही हमारा जीवन बन जाता है। जैसे कोई सकाम उपासना करता है और साप्ताहिक उपवास करता है तो उसका वैसा ही जीवन हो जाता है। जो निष्काम भावना से एकादशी का उपवास करेगा उसका जीवन वैसा ही बन जाएगा। हम किस प्रकार के देवता की भक्ति करते हैं, उन से भी जीवन का अलग-अलग निर्माण होता है।

17.5

अशास्त्रविहितं(ङ्) घोरं(न्), तप्यन्ते ये तपो जनाः|
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः(ख्), कामरागबलान्विताः||17.5||

जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित घोर तप करते हैं; (जो) दम्भ और अहंकार से अच्छी तरह युक्त हैं; (जो) भोग- पदार्थ, आसक्ति और हठ से युक्त हैं; (जो) शरीर में स्थित पाँच भूतों को अर्थात् पांच भौतिक शरीर को तथा अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं उन अज्ञानियों को (तू) आसुर निष्ठा वाले (आसुरी सम्पदा वाले) समझ। (17.5-17.6)

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं- हे अर्जुन! आगे सुनो मात्र सात्त्विक, राजसिक और तामसिक देवताओं की पूजा करना एक बात है, परन्तु और भी मूढ़ लोग होते हैं जो मनुष्य शास्त्र विधि को त्याग कर कल्पित घोर तप करते हैं वह मन से संयुक्त होकर कामना शक्ति से आसक्त होकर पूजा करते हैं वह वैसे हो जाते हैं।

17.6

कर्शयन्तः(श्) शरीरस्थं(म्), भूतग्राममचेतसः|
मां(ञ्) चैवान्तः(श्) शरीरस्थं(न्), तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्||17.6||

विवेचन:- हे अर्जुन! अज्ञानियों का आसुरी स्वभाव हो जाता है। तपस्या रावण ने भी की, भक्ति भी की, हिरण्य कश्यप ने भी तपस्या की। उन्होंने ब्रह्मा जी की भक्ति की परन्तु शिव जी के दर्शन करके भी रावण ने भक्ति नहीं माँगी उन्होंने दस शीश का वरदान लिया। हिरण्य कश्यप ने ब्रह्मा जी की आराधना की, उन्होंने भी भक्ति नहीं माँगी अपितु अमरता का वरदान माँग लिया। उनकी जैसी श्रद्धा थी उन्हें वैसा ही फल मिला।आसुरी भाव में भी उन्होंने इतनी तपस्या की। यह सब हजारों वर्षों की तपस्या के कारण उन्होंने अपने इष्ट को पाया। यह सब शास्त्र विधि से हीन भक्ति है क्योंकि वरदान में भक्ति नहीं मिली यह अच्छा नहीं हुआ। शिवजी को प्रसन्न करके भी रावण राक्षस ही बना। इसलिए शास्त्र विधि द्वारा इच्छा रखने वाले कर्म करता भी है तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होता।

नवरात्रों में देवी जी के नाम के पण्डाल बनाते हैं। गणेश जी की पूजा का पण्डाल बनाते हैं परन्तु वह शास्त्रों से विहीन होते हैं क्योंकि उसमें फिल्मी गाने बजते हैं या किसी नेता का फोटो लगा देते हैं। न ही कोई पण्डित न ही कोई मन्त्र, बस भद्दे गाने लगा देते हैं। वह सब आसुरी भक्ति है। हमें ऐसे पण्डालों में जाने से बचना चाहिए।
भगवान कहते हैं- हे अर्जुन! जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, ऐसे ही उसके आहार होते हैं।

17.7

आहारस्त्वपि सर्वस्य, त्रिविधो भवति प्रियः|
यज्ञस्तपस्तथा दानं(न्), तेषां(म्) भेदमिमं(म्) शृणु||17.7||

आहार भी सबको तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप (और) दान (भी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् शास्त्रीय कर्मों में भी गुणों को लेकर तीन प्रकार की रुचि होती है,) (तू) उनके इस भेद को सुन।

विवेचन:- भगवान कहते हैं कि भोजन भी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार तीन प्रकार का होता है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वैसे ही उसके आहार होते हैं, वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं। भोजन कौन से तीन प्रकार का होता है। भगवान

कहते हैं, अर्जुन! कौन कैसा भोजन करता है? यह भी सुनो-

17.8

आयुः(स्) सत्त्वबलारोग्य, सुखप्रीतिविवर्धनाः|
रस्याः(स्) स्निग्धाः(स्) स्थिरा हृद्या, आहाराः(स्) सात्त्विकप्रियाः||17.8||

आयु, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, हृदय को शक्ति देने वाले, रसयुक्त (तथा) चिकने - (ऐसे) आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं।

विवेचनः- भगवान कहते हैं जो सात्त्विक लोग हैं उनका भोजन सबसे पहले बताया गया है। आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख, प्रीति को बढ़ाने वाले अच्छे भोजन है जो हमारे स्वभाव से मिलते हैं ऐसे सात्त्विक भोजन होते हैं। यहाँ पर भगवान ने सात्त्विक भोजन को श्रेणी में बाँटा है। जैसे सात्त्विक भोजन में मूँग की दाल को सात्त्विक माना गया है। अरहर की दाल को राजसिक माना जाता है और उड़द की दाल को तामसिक माना जाता है परन्तु ऐसा नहीं है। मूँग भी राजसिक और तामसिक हो सकती है। उसकी मात्रा और समय के साथ यह बदल जाता है कि उड़द दाल खाने से हमें नींद आती है क्योंकि वह तामसिक है। वैसे तो यह बहुत शक्तिशाली होती है।

श्रीभगवान कहते हैं, आयु बढ़ाने वाले भोजन दूध, केला, सत्तू, च्यवनप्राश, आरोग्य सेब, आम, रसाहार पदार्थ जो सात्त्विक लोगों को जैसे जूस, दूध, बहुत अच्छे लगते हैं। जो राजसिक और तामसिक होते हैं, वह कहते हैं दूध और जूस को छोड़ो, कोल्डड्रिंक, कॉफी पिलाओ। दूध और फलों का रस, यह सात्त्विक आहार है। घी, तेल, मक्खन, देसी गाय का घी, यदि गाय का चारा शुद्ध हो तो उसके द्वारा प्राप्त किया हुआ घी बहुत स्वास्थ्यवर्धक होता है। जैसे चाय, कॉफी है इससे तुरन्त शक्ति आती है परन्तु यह अस्थिर है। यह हमें लम्बे समय तक शक्ति प्रदान नहीं करते। थोड़े से समय के लिए शक्ति मिल जाती है। लम्बे समय के लिए तो बचपन में पीया हुआ घी ही बुढ़ापे में काम आता है। इसमें ध्यान रखने वाली बात यह है कि हमें मात्रा के अनुसार और भूख के अनुसार लेना चाहिए नहीं तो यह सात्त्विक भोजन भी राजसिक और तामसिक हो जाता है।

प्रातः जल, दोपहर में छाछ और रात्रि में दूध, सात्त्विक माना गया है यदि हम इसका समय बदल देते हैं तो यह राजसिक और तामसिक हो जाता है। मात्रा के अनुसार देसी घी पी लो तो ठीक। परन्तु अगर लोटा भरकर कोई पी जाए तो गड़बड़ हो जाती है। आयु के अनुसार यदि बचपन में लोटा घी भी पी जाए तो कोई बात नहीं, परन्तु पचास साल होने के बाद भी लोटा घी पी जाएँगे तो गलत बात है। जिस व्यक्ति ने भोजन पकाया या जिसने भोजन परोसा उनके भाव कैसे हैं? उसने स्नान करके शुद्ध रूप से बनाया या नहीं। यदि बिना स्नान किए भोजन बनाया तो सात्त्विक भोजन भी राजसिक और तामसिक हो जाता है। गुस्से में बनाया तो भी तामसी हो जाता है। भोजन बनाने और परोसने वाले के मन के विचार कैसे हैं उसके अनुसार भी भोजन सात्त्विक, राजसिक और तामसिक हो जाता है।

तीसरी है तत्त्व दृष्टि-
गुरु नानक जी के दो शिष्य थे, बाला और मर्दाना।
गुरु नानक जी का नियम था कि वह कहीं भी जाते थे तो गाँव के भीतर नहीं जाते थे। वह गाँव के बाहर ही ठहरते थे। एक रात से अधिक भी नहीं रुकते थे। यदि कोई गाँव से आकर भोजन दे जाता था तो खा लेते थे नहीं तो भूखे ही सो जाते थे। गाँव के अन्दर से भिक्षा नहीं माँगते थे। दो दिन से जहाँ-जहाँ गाँव में घूम रहे थे वहाँ उनको किसी ने भिक्षा नहीं दी। वह दो दिन भूखे ही सो गए थे। तीसरे दिन जब गाँव में पहुँचे तो किसी ने देख लिया। जमींदार को सूचना दी तो जमींदार ने तीन चाँदी की थालियों में भोजन लगाकर खीर, पूरी और पकवान बनाकर उनके यहाँ पहुँचा दिया। बाला और मर्दाना प्रसन्न हो गए कि कितनी कृपा हो गई कि हमें खूब पकवान मिले। अब वह दो दिन के भूखे थे चाँदी की थाली में सारे मिष्ठान और गरम-गरम भोजन देख कर बोले, आज तो हमारी बल्ले बल्ले हो गई। शिष्यों ने कहा, गुरुजी भोजन पा लेते हैं तो गुरु जी ने कहा- थोड़ा रुको।

गुरुजी वहाँ से उठ कर चले गए। अब बाला, मरदाना को भूख तो लगी थी और भोजन की खुशबू से उन्हें और तेज भूख लगी तो जहाँ गुरुजी बैठे थे बाला, मर्दाना वहाँ गए और पूछा कि भोजन पा लें तो गुरुजी बोले कि अभी थोड़ी देर ओर रुको।

उतने में छोटी सी लड़की भागती हुई आई और बोली महाराज! माँ ने रोटी भेजी है कहा कि साधु आए हैं रोटी दे दो। मैं आपके लिए वही लेकर आई हूँ तो गुरु नानक जी उस कन्या को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि माँ ने रोटी भेजी है तो दे दो। वह लकड़हारे की बेटी दुपट्टे में रोटी बाँध कर लाई थी और खोलकर तीनों रोटी गुरु नानक जी के हाथ में रख दी। गुरु नानक जी बोले माँ को आशीर्वाद देना और तुम्हारा कल्याण हो। गुरुनानक जी ने उस लड़की को बहुत सारा आशीर्वाद दिया और कन्या को विदा कर दिया। उन्होंने बाला, मर्दाना को बुलाया और कहा कि यह तीन रोटी आई है तीनों एक-एक पा लेते हैं। बाला, मर्दाना हैरान हो गए। चाँदी की थाली में लगे हुए खीर, पूरी, पकवान वह तो ठण्डा कर दिए और इस लड़की की सूखी रोटी जो दे कर चली गई और गुरुजी कह रहे हैं कि खा लो। परन्तु वे श्रद्धावान थे तो बोले, गुरुजी आप क्या लीला कर रहे हो। यह चाँदी की थाली की रोटी तो आप खाना नहीं चाहते और यह सूखी रोटी आप आनन्द से स्वीकार कर रहे हैं इसके पीछे आपकी क्या दृष्टि है तो गुरु नानक जी ने एक रोटी उस चाँदी की थाली से उठाई और एक रोटी लकड़हारे की लड़की वाली ली और दोनों जोर से निचोड़ दी जैसे ही उसको निचोड़ा लकड़हारे की रोटी से तो दूध बहने लगा और जमींदार की रोटी से खून बहने लगा तो दोनों बहुत घबरा गए, गुरुजी बोले यह तो पाप की रोटी है इसीलिए मैं इसे खाने को मना कर रहा था क्योंकि वह बहुत अन्यायी है। हमें यह रोटी भी इसलिए दी है कि साधु महात्माओं की कृपा से इनके पाप कट जाएँ। इसलिए इनका भोजन हमें नहीं खाना चाहिए। इसने गाँव के सभी लोगों पर अत्याचार करके उनका धन लूटा है और इस अन्याय की कमाई से बना हुआ भोजन यह रक्त के समान विषैला है। लकड़हारे की रोटी शुद्ध धन की कमाई की है इसकी रोटी दूध के समान शुद्ध है। हम साधु है इसलिए हमें अन्याय युक्त कमाई का भोजन नहीं खाना चाहिए। तत्व दृष्टा का ध्यान करके भोजन करना चाहिए ।

कभी कहीं भण्डारे लगते हैं तो एक कुछ लोग कहते हैं कि गरीब लोग यदि उस अन्न को पाए तो अच्छा है और अमीर लोग यदि उस अन्न को पाए तो अपने पुण्य का नाश करते हैं। ऐसे भोजन को प्रसाद के रूप में लेना अलग बात है परन्तु वही बैठकर छख कर खाना यह पुण्य का काम नहीं है। राजसिक और तामसिक भोजन आगे देखेंगे। आगे के श्लोक बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।
हरि नाम सङ्कीर्तन साथ आज के विवेचन का समापन करते हैं।

हरि शरणम हरि शरणम हरि शरणम हरि शरणम हरि शरणम हरि शरणम हरि शरणम हरि शरणम।

प्रश्नोत्तर सत्र:-

प्रश्नकर्ता:- अनामिका दीदी
प्रश्न:- गीता कण्ठस्थीकरण का लिंक दे दीजिए।
उत्तर:- kk.learngeeta.com

प्रश्नकर्ता:- स्नेहलता दीदी
प्रश्न:- छठे श्लोक में क्या कहा गया है?
उत्तर:- भगवान कहते हैं कि जो बिना शास्त्र विधि के तपस्या करते हैं वो मुझे परेशान करते हैं।

प्रश्नकर्ता:- मंजू दीदी
प्रश्न:- गीता और रामायण दोनों कैसे साथ पढ़ें?
उत्तर:- गीता जी में भगवान श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिए उन्हें रामायण में राम जी ने जी कर दिखाया। अभ्यास से पढ़ पाएंगे। दोनों में से जो अच्छा लगे वो पढ़िए, दोनों भी पढ़ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता:- सुनीता दीदी
प्रश्न:- बिना श्लोक का अर्थ समझे श्लोक पढ़ने का कोई लाभ होगा?
उत्तर:- जी निश्चित रूप से लाभ होता है। यह मेरा मत नहीं है। यह पूज्य स्वामी जी और आदि शङ्कराचार्य जी का मत है। गीता जी में पाँच सौ चौंहत्तर श्लोक स्वयं भगवान के श्रीमुख से निकले हुए हैं। सम्पूर्ण गीता जी मन्त्रमयी हैं। जिस प्रकार बन्दूक चलाने पर बिना उसकी कार्यप्रणाली समझे भी गोली निकल कर अपना कार्य करती है। माचिस जलाने पर आप उसकी रासायनिक क्रिया से अनभिज्ञ होते हो किन्तु फिर भी वह अपना कार्य करती है उसी प्रकार ये गीता जी के श्लोक भी आपके कल्याण का कार्य करते हैं।

प्रश्नकर्ता:- शीला दीदी
प्रश्न:- शास्त्र विधि से कैसे पूजा करें?
उत्तर:- learngeeta.com पर संक्षिप्त पूजा विधि और उसका वीडियो है, आप उसे देख सकते हैं।

।। ॐ श्रीकृष्णार्पण मस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||